International Journal of Applied Research 2017; 3(1): 948-950

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(1): 948-950
www.allresearchjournal.com
Received: 15-11-2016
Accepted: 19-12-2016

डॉ. तीर्थानन्द मिश्र
व्याख्याता, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. तीर्थानन्द मिश्र
व्याख्याता, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

कालिदासीय सौन्दर्य भावना

डॉ. तीर्थानन्द मिश्र

प्रस्तावना

सामान्यतः जो हमें आनन्द देता है रसमग्न करता है, उसे ही हम सुन्दर कहते है और सौन्दर्य उसी में देखते है। इस प्राणिसामान्य द्वारा अनुभूत सत्य के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि रस, सौन्दर्य एवं प्रेम, जो काम का ही परिश्कृत रूप है, परस्पर सम्बद्व है। सौन्दर्य या लावण्य से कामवृत्ति का उद्रेक और काम वृत्ति के उद्रेक से सौन्दर्य या लावण्य का द ान रस प्रकार ये दोनों बीजांकुर की भॉति परस्पर आश्रित हैं। आनन्द इनकी परिणिति है, इस इनकी पर्यवसिति है।

प्राणिमात्र चाहे वह मानव हो या मानवेतर, रस के लिए, आनन्द के लिए सारा जीवन बेचैन रहता है। भ्रमर उसी के लिए भ्रमण ील रहता हैं मानव वृत्ति की तुश्टि के लिए आमरण अनेक विधि उपक्रम करता रहता है । आनन्दोल्लास से ही यह सृश्टि चक्र स्पंदित हुआ और उसी से स्पंदित हो रहा है, उसी में पुनः लीन हो जाने हेतु सस्पन्द है।

भारतीय सौन्दर्य धारणा में सौन्दर्य का विर्मा दो रूपों में किया गया है, प्रथम विशयगत अथवा वस्तुनिश्ठ और द्वितीय विशयिगत अथवा आत्मनिश्ठ। प्रथम कोटि के विचारक सौन्दर्य का आधान वस्तु अथवा विशय में और द्वितीय कोटि के विचारक सौन्दर्य का आधान मनुश्य के मन में मानते हैं। वास्तविकता यह है कि सौन्दर्य को वस्तुनिश्ठ एवं आत्मनिश्ठ दोनों मानना ही तर्कसंगत होगा। वस्तुनिश्ठ सर्वजन सुलभ उपादान है। पहले में नयाकर्शण तथा दूसरे में अन्तर्मन का आकर्शण प्रधान होता है। आकर्शण ही वस्तुतः सौन्दर्य का प्राणतत्त्व है। साहित्य की सुकुमार कला के अभ्यासी कवियों में उक्त दोनों दृश्टि उपलब्ध होती है। माघ की प्रसिद्व उक्ति क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः' में सौन्दर्य वस्तु निश्ठ बताया गया है। एक अन्य कवि दूसरी दृश्टि कुछ इस प्रकार विज्ञापित करता है–

> दधि मधुर मधु मधुरं द्राक्षा मधुरा सितापि मधुरैव।
> तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम्।।

मनः संलग्नता अर्थात आत्मनिश्ठता की पुश्टि नैशधीय चरित में श्री हर्श ने यह कहकर की है कि परम सुन्दरी रमणी का सौन्दर्य भी बालकों को आकर्शित नहीं करता–यथा युनस्तद्वत्परमरमणीयाऽपि रमणी कुमुराणामन्तःकरणहरणं नैव कुरूते। नै. च. 22/252 भारवि ने भी 'वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुशु' लिखते हुए सौन्दर्य की आत्मनिश्ठता का ही प्रतिपादन किया है।

अतएव, सौन्दर्य जब 'वस्तुनिश्ठ' होता है, तब उस वस्तु में आकार–प्रकार रंग दीप्ति इत्यादि कतिपय इन्द्रिय गोचर तत्वों का समावे ा आव यक होता है और जब उसे आत्मनिश्ठ' कहा जाता है तब यह अभिप्राय ग्रहण किया जाता है कि प्रमाता की मनः स्थिति ही प्रमेय में सौन्दर्य की सृश्टि करता है। भारतीय चिन्तनधारा यह मानती रही है कि रसरूप एवं आनन्द रूप ब्रह्म की ज्योति ही वि व में दृश्टिगोचर होने वाले निखिल सौन्दर्य का मूल उदगम है। सौन्दर्य को प्रायः वस्तुनिश्ठ मानते हुए भी भारतीय चिन्तकों ने उसकी अनुभूति को जो रसानुभुति ही है, पूर्णतः मानसिक माना है जिसके लिए 'चिदावरण भंग' आव यक बताया गया है। इसी कारण भारतीय सौन्दर्य– धारणा में मनुश्य तथा प्रकृति, दोनों ही एक ही सौन्दर्य– तत्त्व का अनुभव करते हुए रसलीन होते है और इसी कारण दोनों की सीमाऍ प्रायः एक दूसरे में मिल जाया करती है।

कालिदास ने प्रकृति की रमणीयताओं का जितना सरस एवं ललित वर्णन किया है, उससे भी अधिक ह्रद्य तथा आवर्जक चित्रण उन्होंने मानव सौन्दर्य का किया है। कालिदास की दृश्टि में सौन्दर्य दैवी विभूति है जो, क्या मानव रूप और क्या प्रकृति रूप, दोनों में समान रूप से भास्वर हो रही है। नारी देह में जो सौन्दर्य प्रका ित होता है वही प्रकृति के विभिन्न पदार्थों में प्रतिबिंबित है और जिस प्रका ा से प्रकृति की नाना– रूपिणी छवि वि व को सम्मोहित कर रही है, वही प्रकरण नारीरूप में प्रस्फुटित होकर चराचर जगत् को बन्दी बना देता है। कालिदास सौन्दर्य के इस रहस्य से

भली–भॉति परिचित हैं। यही कारण है कि नारी रूप के वर्णन में उनकी दृश्टि प्रकृति जगत् का अनुसनधान करने लगती है और प्रकृति रूपों के चित्रण में वह नारीरूप में अनुप्राणित हो जाती है। कुमारसम्भव में नवतरूणी पार्वती का रूप कवि ने प्रकृति की सहायता से किस प्रकार संवारा है, उसका द र्शन निम्न पद्य में किया जा सकता है। –

आवर्जिता किंचिदिव स्तनाभ्यां वासो वसाना तरूणार्करागम्।
पर्याप्तपुश्पस्तबकावनम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव।। कुमार. सं. 3/54

प्रकृति की वस्तुओं एवं दृ यों का अंकन करते समय कालिदास मानव –सुशमा के अंगों एवं तत्त्वों को उपमान रूप में नियोजित करना नहीं भूलते। वसन्त की भाोभा ने अपना श्रृंगार किस प्रकार किया है, इसका चित्रण कुमारसम्भव के निम्न पद्य में देखते ही बनता है–

लग्नद्विरेफा जनभक्तिचित्रं मुखे मधुश्रीस्तिलकं प्रका य।
रागेण बालारूणकोमलेन चूतप्रवालोश्ठमलंचकार।। कुमार सं. 03/30

नारी पुरूश की कल्पना करते समय कालिदास सौन्दर्य समुच्चय का बार–बार कथन करते है। इनके अनुसार सौन्दर्य पृथक् पृथक् पदार्थों में बिखरा हुआ है और इनमें से एक भी पदार्थ अपनी सुन्दरता से हमें चकित एवं आवर्जित कर सकता। कालिदास की सुन्दरियाँ वि व में बिखरे हुए सम्पूर्ण सौन्दर्य की पुंजीभूत मूर्ति है तथा सृश्टि कर्ता ब्रह्मा की मानसिक कल्पना की सर्वाधिक श्रेश्ठ प्रसूति है। इसी का दिग्द र्शन अभिज्ञान ाकुन्तल के निम्न पद्य में कवि द्वारा कराया गया है –

चित्ते निवे य परिकल्पितसत्त्वयोगा रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।
स्त्रीरत्नसृश्टिरपरा प्रतिभाति सा मे धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपु च तस्याः।।अभिज्ञा.2/09

सौन्दर्य का अनुप्राणक धर्म नव – यौवन माना गया है। राजानक रूय्यक ने अपनी 'सहृदय हृदय लीला' नामक पुस्तक में बताया है कि इसी अवस्था में अंगों में सौश्ठव एवं विपुलीभाव आता है और उनका पारस्परिक विभेद स्पश्ट होता है। कालिदास ने उमा के बाल्यावस्था का अतिक्रमण कर यौवनद ाा की प्राप्ति करने का यह अभिराम चित्रण कुछ इस प्रकार किया है–

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यां ाुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्।
वभूव तस्या चतुरस्र ाोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन।। कु. 1/32

भाोभा और सौन्दर्य के वर्णन में नवयौवन के इस विभेदक धर्म को कालिदास ने वि ोश रूप से स्थान दिया है। इस विभेद या उभार को कालिदास ने जमकर अलंकार लक्षित करके सहृदय –हृदय गोचर बनाया है।

कालिदास की सौन्दर्य प्रद र्िानी दृश्टि साधारण मिट्टी से मन को विस्मय में डालदेने वाले रूप के उद्भव की कल्पना का प्रतिवाद करती है। उनकी रूपसियों में या तो राजा या देवता या ऋशि या अप्सरा का रक्त प्रवाहित होना चाहिए। इनके अनुसार सामान्य मानवीय रजवीर्य में प्रभा–तरल रूपज्योति के प्रसव की क्षमता नहीं हो सकती। अभिज्ञान भााकुन्तल में कवि ने भाकुन्तला को देखकर और दिखाकर इसी भाव को निम्न पद्य में स्पश्ट किया है–

मानुशीशु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरूदेति वसुधातलात्। अभि . – 1/24

कालिदास सहज, निरलंकृत सौन्दर्य के उपासक रहे है। भाकुन्तला तथा उसकी सखियों के मधुर द र्शन से चमत्कृत होकर दुश्यन्त अन्यन्त विस्मय से स्वीकार करता है कि इन सहज सुन्दरियों की तुलना में राजहर्म्यों में पलने वाली रम्यांगनाएँ हतप्रभ बन जाती है–दूरीकृताः खलु गुणैरूद्यानलता वनलताभिः। अभि. 1/15। भारतीय सौन्दर्य भावना के अनुरूप कालिदास ने आभरणों की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए भी, उन्हें रूप के निखार के लिए आव यक नहीं माना है। इस विशय में उनका कथन है कि आभूशण सौन्दर्य को जितना अलंकृत करते है, उतना ही वे स्वतः सौन्दर्य के संसर्ग से अलंकृत भी होते है– अन्योन्य ाोभाजननाद्वभूव साधारणो भूशणभूश्यभावः। कु. स. –1/42।

वैदिक वाड्मय में रूप वर्णन की स्पश्ट प्रवृत्ति लक्षित नहीं होती है। प्रेम के प्रंसगों में नारी को पुरूश के साथ वैसे ही लिपटने को कहा गया है जैसे वृक्ष के साथ लता लिपट जाती है। यहॉ से नारी के तन्वी, लता के समान पतली व लचीली होने की व्यंजना ली जा सकती है। वाल्मीकि रामायण में असितेक्षणा, पद्मपलाभालोचना, आयताक्षी, विम्बोश्ठी इत्यादि पदों के कतिपय प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि कतिपय उपमानों की योजना से नारी मूर्ति की एक स्पश्ट कल्पना हमारे साहित्य में अवतीर्ण हो गई थी। भारतीय रूपसाधना ने नारी की जो मोहक मूर्ति स्थिर की थी, उसका उल्लेख कालिदास द्वारा मेद्यदूत की यक्षिणी के सौन्दर्य –वर्णन में संक्षेपतः इस रूप में मिल जाता है–

तन्वी भयामा ि ाखरिद ाना पक्वबिम्बाधरोश्ठी मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभाराद्लसगमना स्तोकनम्रास्तनाभ्यां या तत्र स्याद्युवतीविशये सृश्टिराद्यैवधातुः। उ.मे. –22

कालिदास ने रमणी के कटाक्ष – सौन्दर्य का भी अपने काव्यों में ललित वर्णन किया है। मेघदूत में चितवन छटा के अनेक आकर्शक संक्षिप्त चित्र उपलब्ध हैं। इसी का निद र्िान मेघदूत के निम्न पद्य में द्रश्टव्य है–लोलोपांगैर्यदि न रमसे लोचनैर्वंचितोऽसि। मेघ– 1/20

नयनों का आकर्शण बढाने के लिए कालिदास मदिरा– पान आव यक समझते हैं। मालविकाग्निमित्र में रानी इरावती अपनी दासी से पूछती है– हे निपुणिके । मैं सुना करती हूँ कि मदिरा पीने से स्त्रियाँ सुन्दर लगने लगती हैं, क्या यह सच है जब कि रघुवं ा में कालिदास ने मदिरा को कामदेव का सखा बताया है–

ललितविभ्रमबन्धविचक्षणं सुरभिगन्धपराजितकेसरम्।
पतिशु निर्विवि ाुर्मधुमंगनाः स्मरसखं रसखण्डनवर्जितम्।। रघुवं ा – 9/36

कालिदास का यह वि वास है कि आकृति का सौन्दर्य अन्तरात्मा के सौन्दर्य से भी समन्वित होता है। उन्होंने युवावस्था के मनोहर रूप के दो पक्षों पर अत्यधिक बल दिया है। पहला यह है कि रूप पापवृत्ति की और उन्मुख नहीं होता– यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः।

कुमार सं.– 5/36। सौन्दर्य और पवित्रता के समीकरण में वि वास रखने वाले कालिदास का मानना है कि जो सुन्दर होता है, वह अव य ही पवित्र होता है। नैशधीय चरित में इसी भाव को कालिदास ने राजा नल द्वारा हंस के समक्ष प्रकट करवाते हुए कहा है कि सुन्दर रूप में सुन्दर गुणों का निवास होता है–यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति। रघुवां– 2/51

सौन्दर्य का दूसरा पक्ष जिस पर कालिदास ने बल दिया है, यह है कि सौन्दर्य में प्रिय को लुभाने और जीतने का सामर्थ्य होना चाहिए। अपने समस्त कामोदीपक रूप एवं श्रृंगार के बावजूद, जब पार्वती ने अपने सामने ही स्वंय कामदेव को पिनाकी की क्रोधाग्नि में भस्म होते हुए देखा, तब रूप की भाक्ति से उनकी आस्था हट गई और वे हृदय से रूप की भर्त्सना करने लग गई क्योंकि वह रूप ही क्या जो प्रिय को आवर्जित या विजित न कर सके–निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेशु सौभाग्यफला हि चारूता। कुमार संभव– 5/1

निश्कर्शत

यह कहा जा सकता है कि कालिदास के अनुसार आंतरिक व ीकरणधर्म ही रूप का फल है। इसीलिए, उनके रूप वर्णन का एक ही लक्ष्य है, प्रेमी में उस भाक्ति की प्रतिश्ठा जो प्रिय को सहज ही आकृश्ट कर सके। अत्यंत उच्छल श्रृंगारिक वर्णन के प्रंसग में भी कालिदास इस बात को नहीं भूलते। उनके मत में मदन या मन्मथ द्विधाभूत भाक्तियों का आश्रय हैं ।

सहायक ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास– भाारदा निकेतन, वाराणसी 1997
2. संस्कृत सुकविसमीक्षा – चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी 1987
3. महाकवि कालिदास – चौखम्वा विद्या भवन, वाराणसी 1988
4. अभिज्ञान भाकुन्तलम् – मोतीलाल बनारसी दास , दिल्ली 1987
5. कुमार संभवम् – चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 1987
6. मेघदूतम् – चौखम्भा संस्कृत सीरिज वाराणसी, 1978
7. रघुवं ाम्– चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी –1985
8. नैशधीय चरितम्– चौखम्भा सुरभारती
9. साहित्य भाास्त्र के प्रमुख पक्ष– वाणी वितान प्रका ान, वाराणसी 1966
10. संस्कृत आलोचना – उत्तरप्रदे ा हिन्दी संस्थान, लखनउ 1978